

1

2

3

५. अन्तिम अष्टांग की व्याख्या	३१
६. श्री योगेश्वर की	१
७. आत्मभाषा का प्रभाव	१८
८. अष्टांग नमस्कार	६७
९. समूह का अन्तिम	८१
१०. यम ध्यान	११०
११. कतिपय प्रश्न	१४३

से हम इसे अब प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। हम श्री घाटीवालजी मा. की इस उदारता एवं उनको माहित्य सेवा के प्रति आभारी हैं व गुरुदेव में विनम्र उनके दीर्घायु की कामना करते हुए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

इस अपूर्व पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की आज्ञा सहर्ष श्री मफतलालजी संघवी ने प्रदान की, अतः हम उनके भी अत्यंत आभारी हैं।

नमस्कार महामन्त्र के गूढार्थ को समझने एवं उसको साधना के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो तथा पाठकगण इससे लाभ उठावे यही अभिलाषा है।

चाँदमल सोपानी

मन्त्री

श्री जिनदत्तमूरि मण्डल,
दादावाटी, अजमेर

अप्रैल ११, १९७६

चाहिए—‘ज्ञाता उपयुक्ता’ जानकार और उपयोग नाने का नमस्कार भान नमस्कार है। नमस्कार को ‘गार्गी नमस्कार’ बनाने के लिए उम पुस्तक में जिम वस्तु के ज्ञान का और उम ज्ञान के मतत उपयोग का वर्णन किया गया है, वह ज्ञान मुख्यतः नमस्कार करने वाले जीव की आत्मा निम्नलिखित योग्यता का है। ‘प्रथम योग्य ननो प्रो’ फिर वस्तु प्राप्त नरो’ नीतिकार भी कहते हैं कि—‘समुद्र उन्मत्ता नही करना फिर भी योग्य होने से पानी से अवश्य भरा रहता है, इसलिए आत्मा की योग्य बनाओगे तो सम्पत्तिया अवश्य प्राप्ता होंगी।’

योग्यता प्राप्त करने के लिए अयोग्यता को दूर करना चाहिए। अपात्रता टाले बिना पात्रता प्रगट नहीं हो सकती। जीव की मूल अपात्रता अर्थात् अयोग्यता क्या है और मूल पात्रता अर्थात् योग्यता क्या है, उसका स्पष्ट ज्ञान जहाँ तक नहीं हो, वहाँ तक अयोग्यता को टालने के लिए और योग्यता प्रगट करने की क्रिया के लिए प्रयत्न हो ही कहाँ से ? जीव की मूल अयोग्यता को शास्त्रकार भगवती ने ‘सहजमत’ से सम्बोधित किया है—पू श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज ने उसे ‘भवमाता-ससार की जननी’ की उपमा दी है। मूल नष्ट न हो वहाँ तक शाखा, पत्तिया नष्ट करने का प्रयत्न व्यर्थ जाता है, वैसे भववृक्ष का मूल जो सहजमल—कर्म के सम्पर्क में आने की जीव की अनादि काल की सहज योग्यता कम न हो, उसे नष्ट

१. First deserve and then desire

२. नो दन्वानयितामेति न चाभोभिर्न पूर्यते ।

आत्मा तु पात्रता नेय , पात्रमायान्ति सपदः ॥ ११ ॥

धर्मविदु—टीका

4

5

6

गमन-योग्यता को प्रगट करना और कर्म के सम्पर्क में आने की प्रतादि अयोग्यता दूर करना है ।

श्री पंचमूत्रकार श्री चिन्मन्तनाचार्य और उन्ही के जब्दों का विस्तार करने वाले टीकाकार श्री हरिभद्रमूरि आदि महापुरुष श्री अरिहतादि परमेष्ठियों के अवलम्बन से उस कार्य की सिद्धि सरलता से हो सकती है, ऐसा स्पष्ट रूप में बताते हैं । उन श्री के वचनों का सक्षिप्त मार जानने के लिए उस पुस्तक की प्रस्तावना के बाद कितने ही आस्थों के पाठ उद्धृत किये गये हैं । सद्गुरु की निष्ठा में उनके चिंतन-मनन में महदय जिज्ञामु पाठकों को यह वस्तु स्पष्ट हो जायगी कि जीव को कर्म का बंधन है और उसे उसमें से मुक्त होना है । यह कर्मबन्धन अकस्मात् नहीं है किंतु अपनी योग्यता के कारण ही है । इस योग्यता को 'सहजमल' शब्द में सम्बोधित किया है । उसमें से मुक्त होने की भी जीव की योग्यता है । उस योग्यता को 'तथाभव्यत्व' शब्द में सम्बोधित किया है । जिन जिन कारण नामग्रियों को प्राप्त कर भव्यत्व की परिपक्वता हो उसे 'तथा भव्यत्व' कहते हैं । श्री अरिहतादि परमेष्ठियों के प्रलंबन से यह योग्यता परिपक्व होती है । और जीव मुक्ति सुख का अधिकारी बनता है । इस प्रकार के ज्ञान महिन उपयोगपूर्वक का नमस्कार अपना कार्य अवश्य सिद्ध करता है, इसलिए वह

-
१. भव्यत्वं नाम 'मिद्धिगमनयोग्यत्वमनादिपारिणामिको भाव ।
तथाभव्यत्वमिति विशिष्टमेतत् । कालादि भेदेनात्मना बीज-
मिद्धिभावात् । आदिशब्दात् पालनियति धर्मपुरुषकारपरिग्रह'
मान्यव्याचिक्तत्वात् ।

प्रस्तावना

पर के प्रति का तीव्र त्रेण गत सपने पनि गहरे गग नि
जवरदस्त प्रतिनिवा है ।

अपने प्रति गहरे राग मे प्रेरित जीव जो गितार करता है,
जो वचन बोलता है और जो व्यवहार करता है उनके कारण
कर्म के सम्पर्क मे आता है ।

कर्म के सम्पर्क मे आने की जीव की योग्यता को शास्त्रीय
परिभाषा में 'अनादिकर्मसंतानबद्धत्व' कहा जाता है ।

'अनादिकर्मसंतानबद्धत्व' अर्थात् कर्म के सम्पर्क में आने
की अनादिकालीन योग्यता ।

इस योग्यता का दूसरा नाम है 'सहजमल' ।

मानव के समस्त विचारप्रदेश पर सहजमल की मजबूत
पकड़ रहती है, वहा तक वह अपूर्णता और अंतरायों के बीच
गडबड़ाता रहता है । चार गतियों मे रखड़ा रहता है ।

कर्म के सम्पर्क मे आने की सहज योग्यता के साथ साथ
जीव मे एक दूसरी सहज योग्यता भी है । उसे शास्त्रीय
परिभाषा मे 'मुक्तिगमनयोग्यत्व' कहते है ।

'मुक्तिगमनयोग्यत्व' अर्थात् मोक्ष मे जाने की जीव की
योग्यता ।

उस योग्यता को सीधी सादी भाषा मे 'भव्यत्वभाव' कहा
जाता है ।

सहजमल का ह्रास हो नीचे नीचे गिराव का विकास
होता है ।

श्री नवकार के माय विनिर्निष्ठाता का मन्त्र प्रभुभाव के माय सम्बन्ध करने में परिष्कृत है। तार्किक प्रभुजा का 'सिद्धभाव' और श्री नवकार के माया के योग वात्सल्य में कोई मतभेद नहीं है।

'सर्वजीवहितकरक्षमता' यह सिद्धभाव का स्वाभाविक प्रभाव है।

'सर्वपापप्रणाशकता' यह श्री नवकार का मूलभूत स्वभाव है।

श्री नवकार की भावपूर्वक की गई आराधना के प्रभाव से जो क्षयोपशम होता है उससे सिद्धभाव का आशिर किन्तु स्पष्ट अनुभव होता है।

प्रभुजी के भावों के माय के सम्बन्ध का श्री नवकार यह अजोड माध्यम है।

1

1

4

2

2

सहजमल का दर्शन होना यानी भूतल के उनके अमीम उपकारों का हार्दिक संस्मरण होना है।
 सहजमल के आसीनतामय अद्वैत का आभास प्रमाण में से प्रदृश्य होता जाता है जैसे जैसे यागेनी इस अद्वैत प्रपञ्च की कृपा का दर्शन होता है।

पशुपति का संस्मरण, पशुपति का विमर्श प्रमाण है।
 सहजमल के आसीनतामय अद्वैत का आभास प्रमाण में से प्रदृश्य होता जाता है जैसे जैसे यागेनी इस अद्वैत प्रपञ्च की कृपा का दर्शन होता है।

'बोद्धे' प्रभुपति का दर्शन होना यानी भूतल के उनके अमीम उपकारों का हार्दिक संस्मरण होना।

'आगे' कृपा का दर्शन होना यानी भूतल के उनके अमीम उपकारों का हार्दिक संस्मरण होना।

अपूर्व निष्ठा के विषय अपूर्व नमस्कार संभव नहीं।

अपूर्व निष्ठा तब ही संभव होगी जब प्रभु की कृपा की अचिंत्य शक्ति होने की हकीकत के प्रति हृदय में जरा भी शका न होगी।

इस शंका की जननी भी सहजमल है।

श्री अरिहंत का नमस्कार इस शंका और उसकी माता-स्वरूप सहजमल का मूल से नाश करता है। और उसके बाद श्री सिद्धो की सहज कृपा का सचोटे अनुभव साधक के हृदयस्थ होता है।

आत्मभाव के सहज प्रभाव को स्वीकार किए बिना प्रभु को स्मरण करने की यथार्थ पात्रता नहीं प्रगट होती उमका निरूपण है ।

तीसरे विभाग मे 'अपूर्व नमस्कार' यानी क्या, इसकी स्पष्टता करता है ।

चौथे विभाग में चित्त को 'अमृत का अभिषेक' करनेवाले मंत्राधिराज श्री नवकार को अपनी समग्रता का अभिषेक करने सम्बन्धी बातें हैं ।

पांचवा विभाग 'धर्म ध्यान' के विषय में है ।

छठे विभाग में मंत्राधिराज श्री नवकार की साधना को स्पर्श करते कितने ही प्रश्नों की स्पष्टता है ।

यह पुस्तक मैंने ही लिखी है ऐसा तो मैं आज अथवा कालांतर में भी नहीं कह सकता क्योंकि देव-गुरु की कृपा के प्रभाव सिवाय कोई भी व्यक्ति सिर्फ अपने प्रयत्न से कोई शुभ कार्य कर सकता हो ऐसा मैं नहीं मानता, यह मानने के पीछे मुख्य कारण यह है कि मानव के अदृष्ट ऊपर प्रभुत्व मानव के प्रयत्न का नहीं, परन्तु देवाधिदेव के सर्वजीवहितविषयक सर्वोच्च भाव का होता है ।

मानव के परिणाम पर सहजमल का प्रभुत्व कम होता जाता है यानी अपने को अपनी अल्पता का और श्री पंचपरमेष्ठि भगवतों की महानता का स्पष्ट दर्शन होने लगता है ।

इस दर्शन के प्रभाव से प्रगट होती सवेदना उसे यही कहती है कि 'यदि श्री पंचपरमेष्ठि भगवन्त एक समय भी आत्मभाव को रमणता के वजाय प्रमाद का सेवन करने को प्रेरित हो तो उस जगत् का अस्तित्व भी नहीं रहे ।

दुष्कृतेष्विहपरमप्रगतेषु गर्हा गतानि पशुनिमारा परमाशिरा ।
 तथा निवेदनाप्रतिपत्तिर्दुष्कृत गर्हा । 'यप्रतिहृतेयं कर्मानुपन्नाप-
 नयने,' इति कर्त्तव्या । तथा ३ 'गुह्यतस्य' गतिगिणे
 नियतभादिनोऽप्यंभावातिष्ठेः परकृतानुमोदनस्यस्यारोपन,
 महदेतत्तृशलाशयनिवन्धनमिति परभावनीयम् । 'कृतकारिता-
 नुमतिभेदभिन्ने हि पुण्यपापे' श्रेभिस्तत्तयाञ्चाभाव्यातमाध्य-
 व्याधिवत् तथाभव्यत्वं परिपाच्यते, इति । यतः श्रेयमतः
 यस्मादुक्तवदधिवृत्ततत्त्वसिद्धिः, 'अतः' अस्मात्कारणात्कर्त्तव्य'
 'इदं' दक्ष्यमाणं 'भवितुकामेन' मोक्षार्थिना भव्यसत्त्वेन, कथं
 कर्त्तव्यम् ? इत्याह— 'सदा' सर्वकालं 'सुप्रणिधानं' शोभनेन
 प्रणिधानेन, नात्र कालो नियम्यते किंतु सुप्रणिधानमिति ।
 यदा यदा क्रियते, तदा तदा सुप्रणिधानं कर्त्तव्यमिव्यर्थः ।
 सुप्रणिधानस्य फलसिद्धौ प्रधानाङ्गत्वात् । उक्तं च—

"प्रणिधानकृतं कर्म, मतं तीव्रविपाकवत् । सानुबन्ध-
 त्वनियमाच्छ्रुभांशाच्चैतदेव तत्" इत्थंचैतद्वङ्गीकर्त्तव्यम् ?
 इत्याह— कर्त्तव्यमिदं, 'भूयो भूय.' पुनः पुनः 'सकलेशे' सति
 तीव्ररागादिसवेदनरूपेऽरतावुत्पन्नायामिति यावत् । तथा
 "त्रिकालं" त्रिसन्ध्यं कर्त्तव्यमिदम्, असंकलेशे प्रकृत्या काला-
 यमने सति ।

दशपूर्वधर श्रीचिरंतनाचार्य कृत— पंचसूत्र-प्रथमसूत्रे

(मूल तथा टीका)

टीकाकार— सुविहित शिरोमणि श्रीहरिभद्रसूरिमहाराज

हम भीतर प्रवेश करने को तैयार हो जाते हैं। जिनको हम नमस्कार करेंगे उन्हें हम अपने भीतर आते नहीं रोयेंगे वर हम उन्हें आने के लिए निमन्त्रित करेंगे। इसलिए इस सूत्र वास्तविकता है ग्राहकता। नमन करना अर्थात् सिर्फ मस्तक भुक्ताना नहीं वरन् मन को, मन के विचारों को, मन की इच्छा को तथा मन की तृष्णाओं को भी नमित करना। इस नमस्क मंत्र के पांच चरण हैं। प्रथम चरण है 'नमो अरिहता' अर्थात् अरिहतों को नमस्कार। अरिहंत का अर्थ है जिसके स यन्त्रु नष्ट हो गए हैं, अब ऐसा कुछ नहीं रहा जिनसे लडना पड़े हो यानी क्रोध, काम, लोभ, अहंकार कुछ भी नहीं रहा।

दूसरा चरण है 'नमो सिद्धाणं' अर्थात् सिद्धों को नमस्कार। सिद्ध का मतलब है जिसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। वह अरिहत व सिद्ध में कोई फर्क नहीं है। सिद्ध भी वही हैं जहाँ अरिहंत।

तीसरा चरण है 'नमो आयरियाणं' अर्थात् आचार्यों को नमस्कार। (१) आचार्य वह होता है जिसका आचरण तत् ज्ञान एक है। इसका मतलब यह है कि हम उनको नमस्कार करें जिनका आचरण और ज्ञान अभिन्न है।

चौथा चरण है 'नमो उवज्झायाणं' अर्थात् उपाध्यायों को नमस्कार। उपाध्याय आचरण ही नहीं करता वरन् उपदेश भी देता है। जैसा वह जानता है वैसा वह बताता भी है। इस प्रकार उपाध्याय हमें ज्ञान व आचरण का भान कराते हैं।

पाचवा चरण है 'नमो लोए सव्वं साहूणं' अर्थात् लोक सर्व साधुओं को नमस्कार। यह एक साधारण नमस्कार यानी लोक में जो भी साधु है उन सबको नमस्कार। लो

4

1

8

उन प्रकार नवकार के प्रथम दो पदों में सामर्थ्ययोग को नमस्कार है क्योंकि अरिहत तथा सिद्धों में अनन्त सामर्थ्य बोर प्रकट हुआ है । बाद के तीन पदों में शास्त्रयोग को नमस्कार है क्योंकि आचार्य, उपाध्याय तथा गान्धु में वचनानुष्ठान निहित है । अन्तिम चार पदों में इच्छा योग को नमस्कार है क्योंकि उनमें नमस्कार का फल बताया है । फल सुनने से नमस्कार में प्रवृत्त होने की इच्छा होती है ।

ज्ञानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक तथा तक्ष्यपूर्वक प्रमाद छोड़कर गति-नमस्कार महात्मन की पारामर्शना को जाय तो वह पवित्र प्रमाण बनता है । इसके ध्यान में एव जाय से निरास में भाग स्मृति होती है ।

गणेश,

१९६०

चारमता सोपाणी



ता, ताई धान मकई के जगभूता, धान नमने में साधों
 (रायगन्ता न) हो दे, परमायें रमिता नाम हो हो दे ।

साधों को प्रणाम प्रयो [सहजमल को प्रणाम ।

सहजमल को प्रणाम सर्वान् मृत्यु को जितानेवाली योग्यता
 को प्रणाम ।

सहजमल को प्रणाम अर्थात् भव की प्रति भयानक जेल में
 प्रवेश करने की शक्ति को प्रणाम ।

सहजमल को प्रणाम अर्थात् सर्वजीवहितविषयक भाव का
 तिरस्कार ।

भारतभारत मर्णा जीव की कृति, गमन योग्यता ।

सहजमल के प्रभाव से जीव की संसार में रहने की पायता बढ़ती है, मोक्ष में जाने की पायता तिरोहित होती है ।

सहजमल अर्थात् संसार का मोक्ष, समस्त पापों का उत्पत्ति स्थान ।

सहजमल का प्रभाव नश्वर है जीवत्व का द्वेष ।

जीवत्व से द्वेष करना जीव का स्वभाव नहीं है, परंतु सहजमल का जीताजागता प्रभाव है ।

जैसा सहजमल का स्वभाव है वैसी ही उसकी भाषा है ।

वह गुणी आत्माओं के अवगुण बताता है । उपकार का बदला अपकार से देता है । गुरुजनों की निन्दा करता है । व्यक्ति के सामान्य दोष को आगे कर उसके विशिष्ट गुणों को ढकने में आनंद मानता है । सर्वजीवहितकर धर्मकार्यों की अनुमोदना वह नहीं कर सकता । अठारह पापस्थानों की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए वह रात-दिन अथक परिश्रम करता है ।

सहजमल की भाषा का अभ्यास करने से जीव के द्वेष के महापाप से बचा जा सकता है ।

यह किस तरह ?

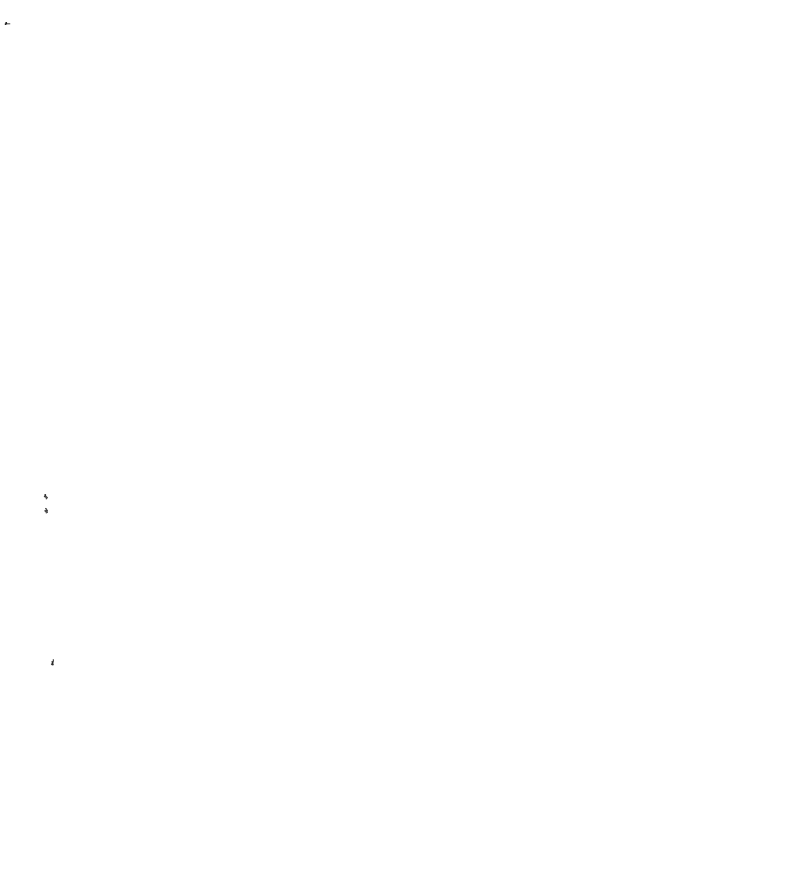
उदाहरणार्थ—अपने को एक सज्जन मिले जिन्हें पारमार्थिक प्रवृत्ति करने के बजाय ऐहिक प्रवृत्ति में अधिक रस है । उस रस के कारण वह भाई परमार्थपरायण आत्माओं की निन्दा करने के लिए प्रेरित होता है । उसकी वह निन्दा—यदि हम सहजमल की भाषा ठीक ठीक जानते हो तो—हमें उसके प्रति दुर्भावना के परिणाम से अलग रखे और सहजमल की भयंकरता

4

8

1

2



द्रव्य-मन का नाम मुनो ही अपने मन को प्रत्यक्ष प्रत्याघात का अनुभूत होता है जनार्दन भान-मन का मायपूर्वक आदर करने की उमारी अनादि काल की कुट्येव ही तरफ अपना लक्ष्य भी भाग्य में ही जाता है ।

जब कि श्री नवकार के साथ मन लगाना, भव्यत्वभाव के साथ मन को जोड़ने में परिणामता है ।

भव्यत्वभाव अर्थात् आत्मभाव ।

आत्मभाव के साथ सम्बन्ध होना यानि परिणाम आत्म-भाव से भर होना । आत्मभावमय यह परिणाम का पवित्र प्रकाश, वाणी और व्यवहार दोनों में होता है ।

सहजमल जीवत्व के द्वेष के परिणाम जगाता है उसी तरह भव्यत्वभाव जीव के शुद्ध परिणाम जगाता है ।

“शिवमस्तु सर्वजगतः” यह भव्यत्वभाव की भाषा है ।

जिस विचार, वाणी और व्यवहार द्वारा पर के हित का पक्ष हो उसके मूल में भव्यत्वभाव होता ही है । क्योंकि परहितपरायणता यही उसका धर्म है ।

श्री नवकार के साथ का सम्बन्ध, सर्वजीवहितपरायणता के साथ सम्बन्ध है ।

‘नमो अरिहताय’ पद का जाप परहितपरायणता की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए परमात्मा के भाव के लिए विलाप है ।

परमात्मा के सर्वोच्च भाव से श्री नवकार अलग नहीं है ।

नमो अरिहताय पद के साथ अपनी समग्रता का सम्बन्ध अपने को परिणाम की उस भूमिका पर ले जाता है, जहाँ स्थिर

4

5

6

7

तो क्या परन्तु उनके पेशगी पादुका के प्रति भी उतना ही स्नेह उमड़ेगा जितना उनके नाम के प्रति होगा ।

जिनके साथ अपना सम्बन्ध होता है, उनके अंग की किसी भी वस्तु के प्रति अपना आकर्षण रहेगा ही ।

अर्थात् श्री नवकार के आराधक, जिन प्रतिमा को देरते ही स्वयं श्री जिनराज को देखे और आनन्द का अनुभव करें वैसे ही आनन्द का अनुभव करता है ।

भव्यत्वभाव खुलता है, यानि ऐसा अनुभव हकीकत रूप बन जाता है ।

गोला फण्डा सूखता है अर्थात् वह हवा में फरफराना शुरू करता है वैसे ही सहजमल का ह्रास होता है यानि भव्यत्वभाव स्पष्ट रूप से चलता फिरता मालूम होता है ।

भव्यत्वभाव प्रगट हो यानि समस्त प्राणों में देवाधिदेव श्री अरिहत परमात्मा की आज्ञा के अनुसार आराधना का भाव जागृत होता है । दान, शील, तप और भाव रूप धर्म की आराधना, प्रधान कर्तव्यरूप समझे । ऐसी आराधना में लगे पुण्यशाली के प्रति आदर भाव प्रगट होता है । और जो सहजमल की असर में आकर पाप में आसक्त रहता है उसके प्रति करुणा तथा माध्यस्थ्य भाव जागृत होता है ।

जीव के भव्यत्वभाव निमग्न परिणाम बने वहां तक मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य इन चार में से किसी एक न एक भावचा का पक्ष रहता है ।

इन चार में से किसी भी एक भावना की सगति सिवाय चैन नहीं पड़ता यानि, भव्यत्वभाव विकसित हो रहा है ऐसा

सर्गों नहीं करता, विश्वहित के भाव सिद्धांत, प्रवृत्ति नहीं होना ।

अपने हित की साधना से विश्वहित की साधना जरा भी भिन्न नहीं है ऐसी समझ 'नमो अस्मिन्ताण' पद के भाव जग में ही भुल होनी है । क्योंकि जिसके द्वारा विश्व के जीवों का हित होगा है उन्हीं धर्म की आराधना के प्रभाव से आसन्नक — हित निम्न होगा है ।

‘नमो अरिहताणं’ पद की आत्महितकर शक्ति में अपने को श्रद्धा बैठती है ।

एक आत्मा जब किसी दूसरे की शरण में जाने को तैयार होती है तब वह दूसरे किसी के पंजे से छूटने के लिए छटपटाता है यह निश्चित है ।

जीवमात्र को शत्रु के पंजे से छूट कर मित्र की संगति में जाना अच्छा लगता है ।

‘नमो अरिहंताणं’ पद के जाप से हम सर्व पापों के मूल रूप सहजमल के पंजे से छूट कर समस्त जीवों के परम उपकारी श्री अरिहंत परमात्मा की शरण स्वीकार करते हैं ।

आगे-पीछे सब तरफ श्री अरिहंत की असीम कृपा का अनुभव होता जाता है, वैसे वैसे सहजमल से मुक्ति होती जाती है । सहजमल से मुक्ति मिले यानि मलीन स्वार्थ से मुक्ति होती है । अशुभकर्मों से मुक्ति होती है । क्रोध, मान, माया और लोभ के परिणाम से ‘पर’ बनता है, राग और द्वेष के बंध कमजोर होते हैं । इन्द्रियो के विषयों में आसक्त होना पशुकार्य समझा जावे । ऐसे कार्यों में प्राणों की शक्ति को खर्च करना इसमें मानव के भव का सरासर अपमान लगता है ।

श्री अरिहंत परमात्मा की शरण में जाने की तत्परता परिणाम तक पहुँचे यानि सहजमल के हमले के समय स्वयं दोहरे बलपूर्वक श्री अरिहंत के भाव तथा आज्ञा के समर्पित हो, क्योंकि जिसके साथ के सम्बंध में स्वयं अपना हित देखता हो, उससे अलग होना वह अपने ही अंग से अलग होने जितना दुःख जीव को होता है ।

अर्थात् आश्रमण के समय दोहरे बल पूर्वक झुंझते वीर सुभट

श्री अरिहंत को नमस्कार करने से सहजमल की ताकत कम होती है। श्री अरिहंत को नमस्कार करने का परिणाम प्रगट होना, मतलब है कि सहजमल की ताकत कम हो रही है। परिणाम में नमस्कार का भाव होता है वहां तक कपाय का सम्बन्ध उसके साथ हो नहीं सकता। दुर्गति के योग्य कर्माणि श्री की ताकत भी वहां जाकर ठंडी हो जाती है, शिथिल हो जाती है।

सहजमल जीव का कट्टर शत्रु है, श्री अरिहंत जीव के परम मित्र है, ऐसे सम्यग्ज्ञान के बाद जीव के प्रति अपने भाव में जरा भी फर्क पड़े यानि आराधक आत्मा सतर्क बन जाता है। पूरे भावपूर्वक श्री अरिहंत को याद करे, श्री अरिहंत की आज्ञा के अनुसार एकाग्रता से स्वाध्याय करे, चारों गति के जीवों की कल्याण की भावना भावे, अपने दुष्कृत्य की खूब-खूब गहरी (निंदा) करे, गुणवान् आत्माओं के गुणों की भूरि-भूरि अनुमोदना करे।

साधना मार्ग में ऐसी सावधानी अनिवार्य है।

साध्य के प्रति इस प्रकार के भाव के बाद साधक को यह सब बोझ रूप नहीं, परन्तु सहायरूप लगता है।

भव्यत्वभाव की चादनी में रमण करने का धन्य अवसर जिसको मिलता है वह आत्मा सहजमल की, भाव प्राणों को भुलसाने वाली अग्नि के बीच एक क्षण भी नहीं बैठ सकता।

‘नमो अरिहताय’ पद आत्म प्रदेशों की मूलभूत कांति को प्रगट करता है। वहां झलझलते तेज में समाविष्ट होने की अनुपम कला के ज्ञाताओं का यह स्पष्ट अनुभव है कि— ‘उस धन्य घड़ी में शिवपद के सुख का स्वाद चखने को मिलता है।

तब प्रकृति के अन्तःप्रमाण में जो अज्ञान भाव
विद्यमान है ?

नहीं ।

तब फिर आत्मा ने उस भावार्थ—अज्ञान भाव की वि-
मित करने वाले भी आत्मा का प्रमाण करते समय हमारे
भाव में हमने अन्त के पक्ष में आने वाले मनुष्य के प्रति
मनुष्य को लेती है उसी भी जानते होना चाहिये कि नहीं ?

होनी चाहिए ।

वह आज हमारे भेदभाव गटाती है क्या ?

पूरी तरह नहीं परन्तु साधारण प्रमाण में भी नहीं, ऐसा
तो नहीं कहा जा सकता ।

वृत्तज्ञता का स्पर्श, पूर्णमा की चांदनी के स्पर्श जैसा
होना चाहिए ।

उसका प्रमाण के साथ सम्बन्ध नहीं होता ।

प्रमाण का गणित भौतिक पदार्थों ने मेरे साक्षात् है ।

प्रगट हुआ सद्गुण सद्गुण' ही कहा जाता है, पीछे उसका
मूल्यांकन करना ठीक नहीं ।

देवाधिदेव को तारकता के स्वीकाररूप वृत्तज्ञता के स्पर्श
के बाद उसे नमने की क्रिया के रूप में जो रस पैदा होता है
वह अवर्णनीय है ।

पर को पहिचानने की तीव्र दृष्टि ही भव्यत्वभाव है ।

उसका तेज कम होता है सहजमल के स्पर्श से, स्वार्थ के
बादल से ।

अपनी इच्छित वस्तु खराब होती है उसका जितना दुःख सामान्य मनुष्य को होता है, कम से कम उतना दुःख, आराधक को आत्मभाव कषाय से दूषित हो तब हो और यदि न हो तो उसे आत्मा के प्रति भाव है ऐसा मुश्किल से ही कहा जा सकता है ।

श्री अरिहंत के प्रति सच्चा भाव जागृत हो तब ही जीव के प्रति भाव जगता है ।

श्री अरिहंत के प्रति भाव जगता है यानि विश्व के साथ जीव का सम्बन्ध होता है ।

उस भाव सम्बन्ध में अन्तराय आवे यानि—पानी के बाहर निकली हुई मछली जैसे तड़फती है वैसे—आराधक आत्मा अनाथता का अनुभव करता है ।

श्री अरिहंत हमारे नाथ है ऐसे दृढ़ विश्वास के पीछे—स्वाम मे भी श्री अरिहंत की कृपा का संगीत सुनाई देता है । श्रीर जब उस कृपा की अचिंत्य शक्ति से भी ज्यादा अप्रथक प्रयत्न हो तब उसे सहजमल की हलचल शुरू होने विश्वास होता है ।

आत्मा को परमात्मा श्रीर जगत् के समस्त जीवों अलग रखने का काम सहजमल करता है ।

सहजमल की श्रीर रुभाव होने से भव जरूर बढ़ता है ।

जब कि श्री अरिहंत का शरण—तीनों लोक की विवेकी आत्मा—हमेशा शुभ की इच्छा करती है ।

श्री अरिहंत की शरण में लाने का जोश 'नमो' पद प्रगट होता है ।

नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय ।

नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय ।
नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय ।
नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय । नमो अरिहन्ताय ।

‘नमो अरिहन्ताय’ अर्थात् अरिहन्त परमात्मन
के समक्ष मान देना ही मोक्ष है ।

‘नमो अरिहन्ताय’ अर्थात् श्री अरिहन्त की आज्ञा को निर्भीक
स्वीकार करना ।

‘नमो अरिहन्ताय’ अर्थात् अपने परमात्म पद, आत्म
श्री अरिहन्त परमात्मा की सर्वोच्च भावना को स्वीकार करना ।

‘नमो अरिहन्ताय’ अर्थात् श्री अरिहन्त की त्रिभुवन क्षेमक
भावदया के समक्ष होना ।

‘नमो अरिहन्ताय’ पद के जाप के समय विश्वनाथ
श्री अरिहन्त परमात्मा का भाव मेरे पर तरस रहा है और मैं
उसमें स्नान कर रहा हूँ ऐसी भावना आराधक की होनी
चाहिए ।

जीव के सहजमनरूपी शत्रु का नाश करना यह ‘नमो
अरिहन्ताय’ पद का स्वभाव है । ऐसे सिद्धस्वभावी पद में अपने
आपको समर्पित करना यह बिना कुछ खोये, कभी नहीं समाप्त
हो ऐसा अक्षय सुख प्राप्त करने की आध्यात्मिक साधना है ।

अरिहन्त को नमन किये बिना मृत्यु को नहीं नमया जा
सकता । जन्म को जीता नहीं जा सकता । दुःखापे को जर्जरित
नहीं किया जा सकता । आपत्तियों को लांघा नहीं जा सकता ।

श्री पंच परमेष्ठि भगवतों के गर्वजीवित निमग्न भाव-
रमरण करना चाहिए।

भव्यत्वभाव के विकास के विषय, विकास की इच्छा
रखना मानो आंग बढ़ कर शास्त्रपाठ पढ़ने जैसी विविध
वात है।

शाश्वत सुख का मूल भव्यत्वभाव है।

बालक जैसे जैसे बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे पाठशाळा
जाने की उसकी योग्यता बढ़ती जाती है, वैसे भव्यत्वभाव
विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे जीव की मुक्तिगमन योग्यता
बढ़ती जाती है।

नाम लेकर जगाने से ऊघता आदमी जगता है वैसे
श्री अरिहंत के नाम से भाव जगते हैं।

श्री नवकार में विराजमान श्री पंच परमेष्ठि भगवतों के
भाव, सोई आत्मा के भाव को इस तरह झकझोरते हैं जित
तरह माता पिता अपनी सतान को जगाते हैं।

श्री पंच परमेष्ठि भगवतों के परम प्रभावक भाव मन्त्रों
थोड़ा भी चिंतन करने के बाद उनका नाम आगवक को उन्हीं
के काम के अगभूत बनने की प्रेरणा पूरी करता है।

भाव जागे यानि विचार-वाणी श्रीर वर्तन में उसकी स्मृति
असर दिखाई दे।

विचार भाव वाले बने।

वाणी भाव बाह्य बने।

वर्तन निर्मल भाव वाला बने।

'पर' की 'स्व' जितनी सभाल रखने की पवित्र भा
जाग्रत हुए भाव से पैदा होती है।

जागृति को कायम रखने के लिए तथा प्रकार की आवृत्ति आवश्यक होती है वैसे आत्मभाव विषयक जागृति को काय रखने तथा विकसित करने के लिए, शास्त्रोक्त व्रत-नियम आवश्यक हैं ।

द्रव्य आरोग्य जितनी ही भाव आरोग्य की जागृता, श्री नवकार के आराधक को हो—होनी चाहिए ।

भाव आरोग्य का मूल्य बराबर समझ में आ जाता है यानि आराधक आत्मा उसके (भाव के) प्रतिकूल असर करने वाले आहार आदि पास आने से उनको स्पर्श करने में भी धरता है ।

आराधना के प्रति सच्चा भाव जगता है यानि उसे खराब असर हो ऐसे किसी प्रसंग में आराधक आत्मा भटकती नहीं ।

विश्वहित के महाकार्य की योग्यता प्राप्त कराने वाले श्री नवकार के साथ त्रिविध सम्बन्ध के बाद, सत्त्वसंपन्न आराधक आत्मा को ऐसा विचार सुनकर भी प्रत्याघात पहुँचता है, जिस विचार में—देवाधिदेव श्री अरिहत परमात्मा की सर्वजीवहितकर आज्ञा और भाव की अनुमोदना के वजाय तुच्छ स्वार्थ की अनुमोदना हो, कपाय की पुष्टि हो, अन्याय का बहुमान हो ।

अन्याय के बहुमान से विश्वहित का अपमान होता है, विश्वहितकर धर्म का अपमान होता है ।

उस अपमान का बुरा परिणाम भोगे बिना, बहुमान की योग्यता जीव में प्रगट नहीं होती ।

जब व्यवित या व्यक्तियों के समूह का लक्ष्य अपनी पात्रता को प्रगट करने के वजाय, पदार्थों के पुंज की ओर

छोटा यानि स्वार्थ ।

बड़ा यानि परमार्थ ।

छोटा यानि विषय और कषाय ।

बड़ा यानि वैराग्य और शुभ भाव ।

जिसके साथ रहने की लगन रहती हो उसके अनुसार अपना आंतरविकास हो रहा है, यह निश्चित है ।

श्री नवकार को समर्पित होने वाली आत्मा स्वार्थ की संगति करने लायक भाग्य से ही रहती है । फिर भी यदि उसे स्वार्थ सेवन करने योग्य लगे तो श्री नवकार की सेवा में वह बराबर नहीं लगा है ऐसा ही कहना पड़ेगा ।

स्वार्थ की सेवा, अंत में सहजमल की पुष्टि में परिणत होती है । सहजमल पुष्ट हो यानि 'प्रभु सेवा' के परिणाम लगभग अदृश्य हो जाते हैं ।

प्रभु सेवा की सच्ची लगन श्री नवकार के समर्पित होने से प्रकट होती है ।

श्री नवकार को नाथ बनाने के वाद वास्तविक मनायता प्राप्त होती है ।

'श्री अग्रिहंत त्रिभुवन के नाथ हैं, करुणा के अवतार हैं' ये शास्त्र वचन अपने जब श्री अग्रिहंत को भाव से मर्मित होते तब ही फीसदी सत्य प्रतीत होते हैं ।

बिना भाव के समर्पण, अधिकांश में स्थूल विषय बन जाता है :

'भाव-मीड' वास्तव में भू डी है ।

ममस्त अभाव का मूल कारण भाव का अभाव है ।

अपनी आत्मा के हित की ओर होता है उतना ही जगत् के समस्त जीवों की तरफ होता है ।

परन्तु यदि उस प्रसंग पर वह भाग्यशाली ऐसा तर्क प्रस्तुत करे कि 'किसी के अहित का चिंतन न करना यह आत्मार्थीपन का लक्षण है, परन्तु हित चिंतन की जो बात आप करते हैं वह जरा भारी और विचित्र लगती है ।'

अहित चिंतन नहीं करने की भूमिका पर पहुँचने का एक ही राजमार्ग है, उसी का नाम सर्वजीवहितचिन्ता ।

इस मार्ग पर चले बिना कोई भी आत्मार्थी अहित चिंतन से सर्वथा पर ऐसे सर्वोच्च हितकर परमपद का पात्र नहीं बन सकती ।

परिणत हुआ आत्मभाव, जीव मात्र को अपने समान देखता है, आत्मतुल्यदर्शीपन कोई साधारण भावना नहीं है, परन्तु जीवत आत्मभाव है । यह भाव जीव के भाव को जगाने में सहायक होता है ।

पर को भाव देना और वह भाव उस पर अंतर करता है या नहीं इस पर यथामतिशक्ति चिंतन बाद में, यह स्पष्ट होता जाता है कि 'विश्वऋण चुकाने का यही एक राजमार्ग है ।'

दूसरे का धन नहीं लिया जाता वैसे परमात्मा के जिस भाव के प्रभाव से हमने मानव भव प्राप्त किया उस भव में उस भावको उचित ऐसा धर्म—परहितचिन्ता—न कर सके तो हम अपनी आत्मा के ही नहीं, परन्तु जगत् के समस्त जीवों के और श्री जिनेश्वरदेव के भी द्रोही होंगे ।

अपने मिले ओहदे के लायक कार्य सिवाय मानव लम्बे समय तक उस ओहदे पर नहीं रह सकता, वैसे महापुण्य के

जिन ती भावना के माय लोगो ने जगत् माय भरी सुख :—
 के दिवसों के माय घमा देना मन समस्त भयंकर दुःखयोग है।
 उम दुःखयोग तो गल्ला प माना अपने भय में पन गई। पाप
 कन्ता है। निर्यञ्जमणि में पैदा होना ? तब 'परममन' गान
 नहीं।

मन मिनने पर भी नतंग मिला या नही मिला ऐसा मानूम
 हो तो, उमगे भगजीवन मिलाय गन्य क्या संभव हो सकता है ?

मिती तदभी का माय भोग के मार्ग में ही दुःखयोग करने
 में द्रिष्टता आती है जैसे मिने मन को अने स्वार्थ की साधना
 के पीछे होता दुःखयोग भगजीवन का कारण बन जाता है।

जिन पुण्यशक्तियों को मन के माय उन्हें परमरक्षक
 श्री नवकार भी मिला है उनका कर्त्तव्य मन को उम 'परम-
 रक्षक' को सौंप देने का मिला जायगा।

अपनी माता की गोद में बालक जितना सुरक्षित रहता है,
 मन का परिणाम—उतना ही सुरक्षित—श्री नवकार-माता के
 गोद में रहता है।

परिणाम की पवित्रता के विषय में असावधान रहना यह
 दो फोलों के बीच बंधो डोरी पर चलते समय असावधान
 रहने जैसा है।

शुभभाव जगत् के समस्त जीवों को अमूल्य निधि है, ऐसा
 ठीक ठीक समझ में आने के बाद उम भाव का श्रीजिनाज्ञा के
 विरुद्ध कोई भी कार्य में उपयोग करने की वृत्ति मन में नहीं
 रहती, क्योंकि श्री जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा के मूल में
 त्रिभुवनहितकर महाकरुणा का प्रवाह बहता रहता है। अर्थात्
 उन श्री की आज्ञा के अनुसार चलने से स्व श्रीर पर का
 कल्याण होता है।



ऐसा समझ में आने वाला है कि जिस प्रकार हमारे जीवन में भी
 आत्मभाव में समाया है। मुख्यतः हमें जो भक्ति में मोत-प्रो
 होता है।

आत्मा की सर्वजीवहितकर महाशक्ति को-दुर्भाग और
 बहिर्भाव करने ही सामने खूटने लगे तो महामोहविजेता
 श्रीजिनेश्वर देव का दाग किसी भी संयोग में गहन नहीं कर
 सकता।

आत्मा के शुभ भाव में सर्वजीवहितकर क्षमता है ऐसी पूर्ण
 निष्ठा के बाद उसकी रक्षा कैसे करना आत्मार्थी को तुरत
 समझ में आ जाता है।

कीमती वस्तु की रक्षा कैसे करना यह प्रत्येक मनुष्य
 जानता है, वैसे आत्मा के भाव की पवित्रता की किस तरह
 रक्षा की जा सकती है, इसका मूल्य जानने वाला पुण्यशाली
 जानता ही है।

आत्मा की अपेक्षा जरा भी कम उसके विशुद्ध भाव का
 मूल्य आंका जाय, तो उसकी रक्षा की तरफ असावधानी रहती
 है और पर प्रति भाव का विशुद्ध प्रवाह उत्तरोत्तर कलुषित
 होता रहता है। उसके प्रभाव से वातावरण विगडता है और
 मानव-प्राणी को अनेक आपतियों का शिकार होने के संयोग
 पैदा हो जाते हैं।

आत्मभाव का प्रभाव अमाप है।

उसकी सर्वजीवहितकर क्षमता अचिंत्य है।

उसके प्रभाव से जीव का हित होता है। अतराय टूटती है,
 आपतियां दूर होती हैं। मंगलमय वातावरण का निर्माण
 होता है।

नमस्कार करने में किस कोटि का समर्पण भाव जागे ? इसका विचार बहुत जरूरी है ।

इसके सिवाय अपने आचार में श्री अरिहंत की आज्ञा का तेज झेलना बहुत कठिन हो जायगा । अपना नमस्कार स्थूल से सूक्ष्म भूमिका में नहीं जा सकेगा । सहजमल की जड़ को हिलाने की उसकी शक्ति के लाभ से अपन वचित रह जायगे । सर्वजीवहितकर भव्यत्वभाव के विकास का मौसम-रूप मानव भव व्यर्थ चला जायगा ।

देवाधिदेव श्री अरिहत को अपना नाथ स्वीकार करने वाली आत्मा उनके सर्वजीवहितविषयक सर्वोच्च भाव की शरण में जाने वाला बने !

उदय में आये कर्मों का श्री पंचपरमेष्ठि भगवतों के आलंबन से बराबर सामना कर सकता है वह सत्ता में रहे कर्मों को जीतने की पात्रता भी प्राप्त कर सकता है ।

कर्म की सत्ता से भी धर्म की सत्ता बहुत बड़ी है ।

धर्म यानि श्री अरिहत् परमात्मा का सर्वजीवहितविषयक सर्वोच्चभाव । श्री सिद्ध भगवंतों का स्वाभाविक अनुग्रह । श्री आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवत् अप्रमत्तता से जिनकी आराधना कर रहे हैं ।

‘स्व’ का ‘सर्व’ के साथ का सम्बन्ध जो विशुद्ध आत्मभाव है वही धर्म ।

धर्म अर्थात् महाकरुणा ।

धर्म अर्थात् भावदया ।

पर के प्रति दया का जो भाव उत्पन्न होता है वह आत्म का आत्म प्रति का ही भाव होता है ।

ऐसे भाव के साथ का सम्बन्ध वह धर्म का सम्बन्ध ।

ऐसे भाव में स्थिर रहा जा सके यानि धर्मध्यान में स्थिरता आ रही है ऐसा कहा जा सकता है ।

धर्म अर्थात् आत्मसमभाव ।

अपने (आत्मा का) भाव में जो स्वयं अपना स्थान देखता है वैसे ही स्थान जगत् के समस्त जीवों को दे सकता है यानि ‘आत्मसमभाव’ आया कहा जाता है ।

नमस्कार से धर्म के साथ सम्बन्ध होता है और उसमें से आत्मभाव प्रगट होता है ।

चलना अर्थात् मार्ग के साथ सम्बन्ध ।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अग्निने जो, मानव अन्न मिता । मन्त्रमन्त्र मिता । पूर
प्राण मिता । दधानिदेव का आगन् मिता । पञ्चमहाव्रतवारा
मानु भगवन्त मिने । श्री जिननेत्य श्रीर ताम्क तीर्थ मिले ।
ज्ञान के प्रचुर ग्रंथ मिले । उन ग्रंथों का नवनीत चराने वाले
व्याख्याता भगवन्त मिने । शारद के पाठ पढ़ानेवाले स्वधर्म-
वधु मिले । उत्तम पर्व के अनुपम दिन मिले । धर्म के मौसमरूप
पशुपण पर्व मिला । धर्मकार्य के लिए उत्तम क्षेत्र मिला ।
धर्मकर्म में सहयोग देने वाले धर्म वन्धु मिले ।

करने को फरमाया है। भाव बिना ही लिया गा दिया बिना
भाव को प्रभुजातन में स्थान न मिलाने का कारण भी देवाविदेव
की करुणा ही है।

नाम्य अपना परमात्मभाव है।

नमस्कार की लिया द्वारा उन भावों के साथ अपने भाव
जोड़ने है।

जोड़ने से खिचाव उत्पन्न होता है।

यह खिचाव उत्पन्न हुवा है या नहीं इसका पता अपने
परिणाम सहजभाव से किसे प्रणाम करते हैं, इससे पता चल
जाता है।

लगभग समतल दिखाने देती जमीन का ढाल किस दिशा
की ओर है यह मालूम करने के लिए समझदार आदमी उस
जमीन पर आधा गिलास पानी गिराता है और उसे उस ढाल
की दिशा का पता चल जाता है, वैसे परिणाम किसको प्रणाम
करता है वह, नमस्कारभाव साथ के सम्बन्ध से तय किया जा
सकता है।

पानी जिस दिशा में बहने लगता है उस दिशा में जमीन
का ढाल है यह निश्चित हो जाता है वैसे श्री नवकार गिनते
समय मन किस दिशा में दौड़ता है उस पर से हम परिणाम
के ढाल को जान सकते हैं।

यदि वह 'सर्व' के बजाय 'स्व' तरफ जाता हो तो समझ
लेना कि अन्दर सहजमल अधिक है, और यदि वह पुरत
श्री पंचपरमेष्ठि भगवत के भाव का अंगभूत बन जाता हो तो
समझ लेना कि आत्मा का असल भाव प्रगट हो रहा है।

तो-तो ।

प्राण को न - । प्राण को प्राण में आते हैं ।
वासना-मूत्र को मल, वद, प्राण के विभिन्न नमस्कार
मा है ।

प्राण भी आती - सा में नमस्कार होते ।

प्राणों के मान में भी ममत्ता और आकर्षण होता है ।

प्रभुजी नमस्कार करते समय आत्म-पद के भावों
नमस्कार करते हैं या अपनी इच्छा को साक्षात् को ? महानिहार
एक आवश्यक है ।

इच्छा अर्थात् महज्जमन की प्राण ।

'पद' को देगे और महबद हो जाते हैं ।

अपनी माता को देनाकर वाक्य विनीता फेर देता है वीमे
श्री जिन प्रतिमा को देनाकर कर मन जान जजात छोडकर
वहा भाग जाना यानि कहा जा सकता है कि प्रभुजी की
तारकता में अपना विश्वास दृढ हुआ है ।

प्रभुजी के साथ जुड़ा मन, प्रभुजी की आज्ञा के अनुसार
काम में लग जाता है ।

जगत् के सर्व जीवों के हित को भावना के साथ अधिक
दृढता से जुटने वाला प्रभुजी की आज्ञानुसार कार्यों को सिर्फ
अपने हित के कार्यों की तरह स्वीकार करता है यह प्रभुजी को
आज्ञा में रहे सर्वजीवहितकर भाव को बहुत ही सीमित करने
की तरह है ।

नोक लगने जितान दुःख अपनी गमग्रता का अनुभव नहीं करे तो मानना चाहिए कि अपने परिणाम पशुभाव के समर्थक हैं। प्रभुभाव से अपन बहुत दूर है।

प्रभु की जो कांति है उसके एक वार के दर्शन के बाद, जगत् के सुन्दर से सुन्दर माने जाने वाला मानव, प्राणी या पदार्थ का सौंदर्य आँखों को आकर्षित नहीं कर सकता वैसे प्रभु के भाव सम्बन्धी बहुत-बहुत चिंतन-मनन के बाद 'पशुभाव' अपने परिणाम में कलकलाहट पैदा नहीं कर सकता, तथा अपने प्राणों को अपनी दिशा में नहीं लेजा सकता।

नख-शिख में नमस्कार का मंकार फैलता है यानि रात की गोद में सोई हुई वनश्री सूर्य के तेज के स्पर्श से नाच उठती है, वैसे खून के बूंद बूंद में अनोखी झनझनाहट और अपूर्वा पवित्रता प्रगट होती है और मन तो पूर्णिमा के चांद की तरह हंसने लगता है।

इस पवित्रता में पवन को पवित्र बनाने की शक्ति होती है। इस हंसी में चांदनी की तरह शीतलता होती है।

स्वयं जिसे अपना अंगभूत माने उसे नुकसान हो यानि स्वयं को ही हानि हुई हो जितना दुःख मानव बंधु को होता है।

फिर चाहे वह साधारण वस्तु हो या बड़ा मकान।

जिसमें स्वयं अपने को देखता है उसे मानो अपनेपन का ज्ञान न हो उतना ही भाव मानव देने को प्रेरित होता है।

ये सब नमस्कार के ही प्रकार हैं।

श्री अरिहंत परमात्मा को भावपूर्वक नमस्कार करने से, स्वयं उन श्री के भाव के अंगभूत बनता जाता है तथा सब को उस भाव के अंगभूत जैसा देयता है।

सर्व के हित की शान्ता के मात सम्बंध कर रहे हैं, ऐसे भक्तों को क्षण भर भी भूत जाये तो यह उद्गता गिनी जायगी, कुतघ्नता गिनी जायगी ।

अपने परिणाम किनको नमस्कार कर रहे हैं तत्सम्बन्धी पूरी जागरूकता प्रत्येक आराधक में होनी चाहिए ।

रंग का एक कण पानी को अपना बना लेता है यदि वह पानी, पानीरूप में पहिचानने के बदले, गुलाबी, लाल या वादल के रंग के नाम से जाना जाता है तथा पीने के पानी के रूप में उसका उपयोग नहीं हो सकता वैसे अपनेपन के विचार का रंग, आत्मा के विशुद्ध परिणाम की सर्वजीवहितकर क्षमता को बहुत मद कर देता है ।

आत्मा के विशुद्ध परिणाम को सिर्फ अपने विचार से रंग यह महा अपराध है, विश्वद्रोह है, विश्वपति की आज्ञा को भंगकर अवहेलना है ।

आत्मा के विशुद्ध परिणाम को सिर्फ अपना मानना धर्म या प्रभु को सिर्फ अपना मानने के समान है ।

पवन और प्रकाश के प्रभाव से वातावरण की नमी दूर जाती है वैसे नमस्कार के प्रभाव से परिणाम के भीतर 'अपनेपन' की नमी दूर हो जाती है ।

दर्पण को छोटासा भी दाग लग जाता है यदि पर का पू प्रतिबिम्ब देखने की क्षमता कु ठित हो जाती है, वैसे परिणाम को अपनेपन के विचार का थोड़ासा भी रंग लग जाता है या उसमें पर को प्रवेश करने की जगह नहीं रहती ।

यत्र की सहायता के बिना ऊपर नहीं चढ़ने वाला पाप सूर्य या अग्नि के ताप से गरम होता है उसके साथ भाप रूप

नियमों को पालने के लिये दंडना प्रणाली, विद्वानों के
आराधना के साथ सम्मान नहीं हो सकता ।

विचार, वाणी और कर्मों में सम्मति शास्त्रोक्त नियम
भंग होते हैं यानि आराधना समझ ज़रूरी किन्ना के समान
बनती जानी है ।

आहार दोषदाता नहीं दिया जाय ।

बाणी दोषदाती नहीं बोनी जाय ।

विचार दोषदाते नहीं बनाये जाय ।

यह सब—आराधना के लिए इतना ही ज़रूरी है जितना
ज़रूरी जीने के लिये श्वासोच्छ्वास ।

अपूर्व नमस्कार के लिए सामग्री भी अपूर्व चाहिए ।

अपूर्व यानि बहुमूल्यवान हो ऐसा नहीं, परन्तु पवित्र भी
ब्रेस्क हो ।

जिनका नाम है 'सर्वज्ञ'। यह भाव किमो भी संपन्न
 मनुष्य मनुष्य का मन ही मन करने के कारण, माया जेम् जे
 तर्कमूलक होता जाता है। ऐसे ऐसे उसका जगत् के समस्त जी
 के प्रति भाव, यही भाव ही होता जाता है।

हमारे सार का सत्य ही के साथ सम्बन्ध होता है, जब
 जिनामोश का सम्बन्ध सारे जगत् के साथ होता है, आयुक्त
 कई जिनो के साथ सम्बन्ध होता है, और ग्रहमयी का व
 जिने से बने प्राण के साथ होता है। जैसे जीव भी जैसे जैसे
 ऊँचा आता है वैसे वैसे जगत् के सब जीवों के साथ उसका
 भाव-सम्बन्ध अधिक सक्रिय होता जाता है। स्थूल प्रकार की
 सक्रियता से अधिक भावविषयक सक्रियता बहुत ही सूक्ष्म होती
 है। और वह तथाप्रकार की भूमिका के योग से सिद्ध की जा
 सकती है।

आख वद हो तो पास का पदार्थ भी नहीं देखा जा सकता,

.....

.....

इसी तरह का नमस्कार तब तक मान्यता को ले रहेगा जब तक कि, यद्यपि भी वास्तविकता में नहीं होते हैं।

भी यशस्वी का नमस्कार करने में यशस्वी के लिए भावना के साथ मान्यता होता है और मोक्ष की प्राप्ति प्रगट हो रहा तक मान्यता अपने साथ रहती है, अवस्था क होने जाते हैं। और जो आते हुए अनुभव होते हैं वे भी अति काज में तुम्हारे दीपक की ज्योति की तरह मद होते हैं।

विश्वमान विपरीत मयोगों में अपूर्व नमस्कार के उल्लास सिद्धांत, प्रभुभाव की तरफ रहने का कार्य, बहुत में भाग्यशाली आत्माओं को भी, बड़ा कठिन मान्यता होता है जगत् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आज का वातावरण बहुत भारी बन रहा है। इसमें जगत् के कल्याण की भावना के स्वर के बजाय 'भारना' और 'मरना' के भयानक स्वर गुनाई दे रहे हैं मानो मानवी का समग्र आतर्भाव वातावरण में स्थित न हुआ हो ऐसा अनुभव भी कभी हो जाता है।

अतःकरण सुधरने पर ही वातावरण सुधरता है इस सत्य

1

1

1

1

अपने को अर्घर्मी कहलाना अच्छा नहीं नगे यह बात अनु-
मोदनीय है; परन्तु यदि वह मोक्षिक वृत्ति हो तो, कल्पना नहीं।

जिसका मूल गहरा हो वह वृत्ति।

कल्पना क्षणिक होती है। अस्थिरता ही उसका स्वभाव है।

अध्यवसायरूप वृत्ति की तथा प्रकार की असर आचरण
तक फैलती है।

अर्थात् जिस भाग्यशाली की वृत्ति अपने को 'अर्घर्मी'
कहलाने की न हो और आचरण कम कर करता हो तब भी
ध्येय तो सर्वजीवहितकर धर्म का ही होता है। "आचरण करने
लायक जैसा तो धर्म ही है"। ऐसी आवाज उसके परिणाम में
होती है।

धर्म का आचरण करना यानि अधर्म के आज तक के
सम्बंध के बंधन को त्रिविध प्रकार से छोड़ना है।

मैत्रीभावना के द्वारा क्रोध को जीतना वह धर्म।

प्रमोदभावना द्वारा मान को जीतना वह धर्म।

करुणाभावना द्वारा माया को जीतना वह धर्म।

माध्यस्थ्य भावना द्वारा लोभ को जीतना वह धर्म।

अपने प्रति के राग के त्याग द्वारा पर के प्रति के द्वेष को
निर्मूल करना वह धर्म।

इन चारों भावनाओं के उत्कृष्टतम शिखर पर श्री अरिहत
परमात्मा विराजमान हैं। ऐसे अनंत श्री अरिहंत भगवत को
नमने का अनुपम योग श्री नवकार को नमने से सिद्ध होता है।

इसीलिए मन को श्रीनवकार को भावपूर्वक सुपुर्द करने

... ..

यही कारण है कि जो भी 'मार्ग' कहलाने लो न हो 'मार्ग' का अर्थ कम-कम किया हो या भी 'मार्ग' तो 'मार्ग' ही है। 'मार्ग' का अर्थ करने नायक जेसा तो 'मार्ग' ही है। 'मार्ग' का अर्थ करने 'मार्ग' ही है।

धर्म का आचरण करना यानि 'मार्ग' के आज तक के सम्बंध के बंधन को त्रिविध प्रकार से छोड़ना है।

मैत्रीभावना के द्वारा मोह को जीतना वह धर्म।

प्रमोदभावना द्वारा मान को जीतना वह धर्म।

करुणाभावना द्वारा माया को जीतना वह धर्म।

माध्यस्थ्य भावना द्वारा लोभ को जीतना वह धर्म।

अपने प्रति के राग के त्याग द्वारा पर के प्रति के द्वेष को निर्मूल करना वह धर्म।

इन चारो भावनाओ के उत्कृष्टतम शिखर पर श्री अरिहंत परमात्मा विराजमान हैं। ऐसे अनंत श्री अरिहंत भगवत को नमने का अनुपम योग श्री नवकार को नमने से सिद्ध होता है।

इसीलिए मन को श्रीनवकार को भावपूर्वक सुपुर्न करने

मन का असर यदि परिष्कार हो जाय, तो मन का
 प्रभाव ।

जब मन को मन की शक्ति के प्रभाव से ईश्वर की
 निराला गति के पदे तक पहुँच कर उसकी शक्ति में समाप्त
 बनती है, तब ही मनप्रदेश से अलगाव प्राप्त करने की अपनी
 अनुपम प्रकाश की शक्ति के प्रभाव से श्री नारायण, मन के
 मूल तक पहुँच कर उसके शुद्धि करण का महाकार्य करता है ।

चाहे जितना शुद्ध हुआ जब भी कीचड़ के संसर्ग से मलीन
 हो जाता है तब ही शुद्ध परिणाम भी सराब—अशुभ विचार से
 अपवित्र बन जाते हैं ।

व्यागो-द्वय तो विना तो तब माने मन को विना
नकती है कि नहीं ?

हां, वह भी नकती है ।

उम विना तो रोके बिना उममे 'म' के ग्यान पर 'सं'
को नाना जितना कार्य करते मगग अपने को कीनमे संयोग
रोकने वाले हैं ?

'संयोग प्रतिकूल है' ऐसा विचार कर बैठे रहने मात्र से वह
अनुकूल नहीं हो सकता ।

सब के सानुकूल बनने के भाव से ही संयोगो की प्रति-
कूलता को रोका जा सकता है, दूर किया जा सकता है ।

सब के सानुकूल बनने के भाव ही नमस्कारभाव हैं ।

पर के प्रतिकूल नहीं बना जाय तो कोई प्रतिकूलता स्व को
नहीं रोकती । अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि सर्वजीवो
के हित को भाव देने की वृत्ति से जिसकी प्रवृत्तिया रगी हुई हैं
उसे सानुकूल होने के लिए तीन जगत् के विवेकी आत्मा सदा
तत्पर रहते हैं ।

'पर' के प्रतिकूल होना यह सहजमल का स्वभाव है ।

'सर्व' के सानुकूल होना यह भव्यत्वभाव का स्वभाव है ।

समस्त प्रतिकूल संयोगों का मूल है—सर्वजीवहितविषयक
शुभभावना का अभाव ।

जीवों को भाव देने मे संयोगो के नाम पर जितना प्रमाद
किया जाता है वह सब जीव के विकास मे रुकावट पैदा
करता है ।

जिनकी आतर्चेतना मे जाग्रति सूचक सहज ही हलचल

3

4

मोक्षदायक है जो कि १५ दिनों के अन्त में प्राप्त होता है।
नर का भगवान् का नाम है सुन्दर है किन्तु जो ऐसा पुत्र है
उसके द्वारा जन्म के द्वारा मरण नहीं होता।

मार्ग, रास्ता और हीनता के भगवान् के अन्त में ही
उनके अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत
है जो कि अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत
अन्तर्गत है, अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत।

आत्मा में प्रभुता का अनुभव करने का महामार्ग
को जन्म तथा मरण से, आत्मा का पापों में समावेश होने से
पूरे अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत का अन्तर्गत
प्रकार के प्रश्न करना यह पारम्परिक भगवान् की प्रसीध
उपहार के शक्ति का पुत्र का स्वरूप दोहरी में तीव्रता का वृद्ध
प्रयास है।

छोटीसा एक वादली दाण्डे में स्था का जल में बदल
देता है अथवा शुष्क प्रदेश में जल प्रवाह फला देता है वैसे
श्री नवकार का प्रत्येक अक्षर, परिणाम का शुष्कता को अपनी
परम पवित्र शक्ति से तत्काल दूर कर देता है।

परिणाम को जैसे ही श्री नवकार का अक्षर स्पर्श करता है
कि तुरन्त समग्र आतर्चेतना अद्भुत स्पन्दन का अनुभव करती

मन को तब तक नहीं चलाया जाता जब तक कि वह
 जिस काम में लगे रहता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम
 में लगता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम में लगता है, उसे पूरा नहीं करता।

इसलिए मन को तब तक नहीं चलाया जाता जब तक कि वह
 जिस काम में लगे रहता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम
 में लगता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम में लगता है, उसे पूरा नहीं करता।

मन को तब तक नहीं चलाया जाता जब तक कि वह
 जिस काम में लगे रहता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम
 में लगता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम में लगता है, उसे पूरा नहीं करता।

मन को तब तक नहीं चलाया जाता जब तक कि वह
 जिस काम में लगे रहता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम
 में लगता है, उसे पूरा नहीं करता। जो भी काम में लगता है, उसे पूरा नहीं करता।

जिसे कल्याण प्यारा है उसे श्री नवकार के प्रति प्यारा
 होता है।

श्री नवकार के प्रति सच्चे भाव के सिवाय, कल्याण को
 कामना करना यह ब्रह्म ब्रह्म कर मार्ग पर चलने की क्रिया
 करने के समान उलटी चेष्टा है।

पुनःपुनः

$\frac{1}{n} \sum_{j=1}^n x_j = \bar{x}$

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 84

THE T-7000, JULY 1970, 13

NOTHING IS OF MORE IMPORTANCE

3-4 ଗୋଟି ମାଛ ଏବଂ ୧ ଗୋଟି ସ୍ତ୍ରୀ ମାଛ

746 11 0205 of 1401 1601 1611 1621 1631 1641 1651 1661 1671 1681 1691 1701 1711 1721 1731 1741 1751 1761 1771 1781 1791 1801 1811 1821 1831 1841 1851 1861 1871 1881 1891 1901 1911 1921 1931 1941 1951 1961 1971 1981 1991 2001 2011 2021 2031 2041 2051 2061 2071 2081 2091 2101 2111 2121 2131 2141 2151 2161 2171 2181 2191 2201 2211 2221 2231 2241 2251 2261 2271 2281 2291 2301 2311 2321 2331 2341 2351 2361 2371 2381 2391 2401 2411 2421 2431 2441 2451 2461 2471 2481 2491 2501 2511 2521 2531 2541 2551 2561 2571 2581 2591 2601 2611 2621 2631 2641 2651 2661 2671 2681 2691 2701 2711 2721 2731 2741 2751 2761 2771 2781 2791 2801 2811 2821 2831 2841 2851 2861 2871 2881 2891 2901 2911 2921 2931 2941 2951 2961 2971 2981 2991 3001 3011 3021 3031 3041 3051 3061 3071 3081 3091 3101 3111 3121 3131 3141 3151 3161 3171 3181 3191 3201 3211 3221 3231 3241 3251 3261 3271 3281 3291 3301 3311 3321 3331 3341 3351 3361 3371 3381 3391 3401 3411 3421 3431 3441 3451 3461 3471 3481 3491 3501 3511 3521 3531 3541 3551 3561 3571 3581 3591 3601 3611 3621 3631 3641 3651 3661 3671 3681 3691 3701 3711 3721 3731 3741 3751 3761 3771 3781 3791 3801 3811 3821 3831 3841 3851 3861 3871 3881 3891 3901 3911 3921 3931 3941 3951 3961 3971 3981 3991 4001 4011 4021 4031 4041 4051 4061 4071 4081 4091 4101 4111 4121 4131 4141 4151 4161 4171 4181 4191 4201 4211 4221 4231 4241 4251 4261 4271 4281 4291 4301 4311 4321 4331 4341 4351 4361 4371 4381 4391 4401 4411 4421 4431 4441 4451 4461 4471 4481 4491 4501 4511 4521 4531 4541 4551 4561 4571 4581 4591 4601 4611 4621 4631 4641 4651 4661 4671 4681 4691 4701 4711 4721 4731 4741 4751 4761 4771 4781 4791 4801 4811 4821 4831 4841 4851 4861 4871 4881 4891 4901 4911 4921 4931 4941 4951 4961 4971 4981 4991 5001 5011 5021 5031 5041 5051 5061 5071 5081 5091 5101 5111 5121 5131 5141 5151 5161 5171 5181 5191 5201 5211 5221 5231 5241 5251 5261 5271 5281 5291 5301 5311 5321 5331 5341 5351 5361 5371 5381 5391 5401 5411 5421 5431 5441 5451 5461 5471 5481 5491 5501 5511 5521 5531 5541 5551 5561 5571 5581 5591 5601 5611 5621 5631 5641 5651 5661 5671 5681 5691 5701 5711 5721 5731 5741 5751 5761 5771 5781 5791 5801 5811 5821 5831 5841 5851 5861 5871 5881 5891 5901 5911 5921 5931 5941 5951 5961 5971 5981 5991 6001 6011 6021 6031 6041 6051 6061 6071 6081 6091 6101 6111 6121 6131 6141 6151 6161 6171 6181 6191 6201 6211 6221 6231 6241 6251 6261 6271 6281 6291 6301 6311 6321 6331 6341 6351 6361 6371 6381 6391 6401 6411 6421 6431 6441 6451 6461 6471 6481 6491 6501 6511 6521 6531 6541 6551 6561 6571 6581 6591 6601 6611 6621 6631 6641 6651 6661 6671 6681 6691 6701 6711 6721 6731 6741 6751 6761 6771 6781 6791 6801 6811 6821 6831 6841 6851 6861 6871 6881 6891 6901 6911 6921 6931 6941 6951 6961 6971 6981 6991 7001 7011 7021 7031 7041 7051 7061 7071 7081 7091 7101 7111 7121 7131 7141 7151 7161 7171 7181 7191 7201 7211 7221 7231 7241 7251 7261 7271 7281 7291 7301 7311 7321 7331 7341 7351 7361 7371 7381 7391 7401 7411 7421 7431 7441 7451 7461 7471 7481 7491 7501 7511 7521 7531 7541 7551 7561 7571 7581 7591 7601 7611 7621 7631 7641 7651 7661 7671 7681 7691 7701 7711 7721 7731 7741 7751 7761 7771 7781 7791 7801 7811 7821 7831 7841 7851 7861 7871 7881 7891 7901 7911 7921 7931 7941 7951 7961 7971 7981 7991 8001 8011 8021 8031 8041 8051 8061 8071 8081 8091 8101 8111 8121 8131 8141 8151 8161 8171 8181 8191 8201 8211 8221 8231 8241 8251 8261 8271 8281 8291 8301 8311 8321 8331 8341 8351 8361 8371 8381 8391 8401 8411 8421 8431 8441 8451 8461 8471 8481 8491 8501 8511 8521 8531 8541 8551 8561 8571 8581 8591 8601 8611 8621 8631 8641 8651 8661 8671 8681 8691 8701 8711 8721 8731 8741 8751 8761 8771 8781 8791 8801 8811 8821 8831 8841 8851 8861 8871 8881 8891 8901 8911 8921 8931 8941 8951 8961 8971 8981 8991 9001 9011 9021 9031 9041 9051 9061 9071 9081 9091 9101 9111 9121 9131 9141 9151 9161 9171 9181 9191 9201 9211 9221 9231 9241 9251 9261 9271 9281 9291 9301 9311 9321 9331 9341 9351 9361 9371 9381 9391 9401 9411 9421 9431 9441 9451 9461 9471 9481 9491 9501 9511 9521 9531 9541 9551 9561 9571 9581 9591 9601 9611 9621 9631 9641 9651 9661 9671 9681 9691 9701 9711 9721 9731 9741 9

[illegible][illegible]

मानिन प्रभुमभा । उस जाति के पास परत हुए ही
दाये दुर्भेय शत्रु के परत हो तरह । सार फला हुआ
रहता है ।

प्रकाश में आखिं भारी-भारी लगती है वैसे प्रशुभभा भोने
परिणाम में जीवन भाररूप बन जाता है ।

अशुभभाव यानी ग्रहित का भाव ।

कोई अपने घर में कड़ा इकट्ठा नहीं करता तो फिर बाह्य का कूड़ा अंदर लाने की बात तो हास्यास्पद ही ठहरेगी !

प्रभु के मातृ तन्त्र के जाने माने गो नानाकार हो मन परा
सोप शिवा जाय गानी परिणाम ही शुद्धि गानी तना प्रो
वर्मचरान किसे कहना यह मा तनु स्पष्टता में ममक
प्राता है ।

इस परिणाम और तत्सम्बन्धी ध्यान में समरसता का
अनुभव हो ऐसी समतल जमीन पर फले प्रकाश में प्रफ
देराते हैं ।

वहा नहीं होता स्व प्रति राग, पर प्रति द्वेष ।

‘आत्मा की आत्ममस्ती’ ऐसे नाम से जिसे बहुत भाई
पहिचानते हैं तथा पहिचाने जाते हैं उसका वास्तविक अनुभव
उस समय होता है ।

अग्नि की गर्मी में जिस तरह स्वर्ण शुद्ध होता है उसी तरह
श्री नवकार के जाप की गर्मी में परिणाम विशुद्ध होते हैं ।

स्वर्ण का टुकड़ा अग्नि के ठीक बीच में रखा जाता है
यानी उसे फीरन ही अग्नि की गर्मी का स्पर्श होता है, वैसे
जाप में मन ठीक श्री नवकार में रहता है यानी उसकी अशुद्धि
दूर होने लगती है, तथा ज्ञानावरणीयादि द्रव्य कर्मों की उस
पर आक्रमण करने की शक्ति कमजोर होने लगती है । अथवा
उन द्रव्य कर्मों के आक्रमण के सामने स्थिरता से रहने की
उसकी शक्ति अधिक शुद्ध और स्थिर होने लगती है ।

जिसे जिस विषय में रस होता है उसमें वह एकाग्र बन
सकता है, उस एकाग्रता से ध्यान उत्पन्न होता है ।

ध्यान आना तब कहा जाता है जब स्वयं उस विषय में
पूर्णरूप से ओतप्रोत हो जाय, अथवा वह उस विषय के बजाय

[illegible]

भास्वत्-मान में जोर का जो समर्थ प्रतीत होता है उसे
 तुल्य बलमें व्यक्तित्व प्राप्त होता है।
 धर्म का जो स्वरूप है, उसका
 प्रभाव में...

धर्म का जो सभा है उसका प्रभाव प्रगट करण धर्मव्यापन
प्रभाव में अनुभव होता है।
प्रयत्न जिसके प्रति

अर्थात् जिसके परिणाम में पवित्रता प्रगट होती है उसे समस्त जीवों को आत्मतुल्यमान देने के लिए प्रयत्न करने की जरूरत नहीं होती, परन्तु वह, उस भाव की भूमिका में ही स्थिर हो जाता है।

नमःस्तु भगवते श्रीगणेशाय नमः ।
 नमःस्तु भगवते श्रीगणेशाय नमः ।

जिसका मन प्रभुजी की नमस्कार करे उसे भगवान् की
 प्रभुत्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

स्वाध्याय नाम की प्रणाम करने का भाव कम नहीं है।
 तब सदा ही प्रभुजी की नमस्कार करने के ऊपर परिणाम प्रगट
 नहीं होते ।

धर्म की नमस्कार करने से प्रभुजी की प्रणाम पहुँचता है
 प्रभुजी की नमस्कार हो जाता है ।

अपने विचार से 'पर' बना जाय यानी परहितचिन्ता के
 साथ मन जुड़ा है ।

स्वयं पर की पहिचानने लग जाय उसी तरह धर्म की
 पहिचानने लगता है ।

प्रभु के भाव सिवाय पर प्रति भाव नहीं जगते ।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥

इसे जानो किन्हे भाग्य की ओर प्रभाव में पड़ने पर
मायु में भाग्य में रहने से उस प्राण की प्रमाण शक्ति ।

धर्म धर्म से किन्हे मुक्त जातमा के सर्वोच्च भाग्य का स्वा-
भाविक प्रभाव ।

उस धर्म के साथ जा करने वाले श्री नवहार हो दिया जाता
भाव, जीवमात्र के हित को भाव देने की भाव्यशक्ति प्रात्माओं
की भावना को साथे बनाती है ।

धर्ममा के हृदय में विश्व होता है ।

धर्ममा जिनेश्वर का स्मरण करता है ।

कर्मों के फल को प्राप्त करने के लिए कर्मों को करने से न बचता है।
इसका भी अर्थ है।

जो भी सोचता है कि मैं कर्मों का फल चाहता हूँ, वह कर्मों को करने से न बचता है।
तब तो उसी परिणाम का दुःख भी उसे है।

तब तो वह भी जानता है, कि मैं कर्मों का फल चाहता हूँ, वह कर्मों को करने से न बचता है।
मगर, मैं कर्मों का फल चाहता हूँ, वह कर्मों को करने से न बचता है।
तो जो-किसी को भी है।

धर्मों का अर्थ अधिकतर भी इसी ही रहता है।

बाह्य जगत् को जितना अधिक जानना चाहता हूँ, मैं कर्मों को करने से न बचता हूँ।
है, उसको वह प्रकृति कहती जानती है।

उसकी नदरता प्रकृति ही है।

श्रीनृणां के शरणागत हो नदरता का पाठ पढ़ाना पड़े
यह हंस को तैरना सिखाने जैसी बेहूवी बात है।

देव और गुरु की कृपा को मदेन अपने आगे - पीछे रखकर
वह चमत्कार करता है।

स्वव्यक्तित्व के विकास करते समय भी अधिक भाव उसका
देवाधिदेव के परमतारक शासन की प्रभावना की तरफ
रहता है।

शासन की प्रभावना के लिए खर्च होने वाले द्रव्य को वह
'द्रव्य' गिनता है, बाकी सब उसको मिट्टी के ढेले की तरह
लगते हैं।

शासन की प्रभावना के लिए सार्थक होने वाले शुभभाव

जीव के प्रति भाव कम हो यानी धर्म का प्रभाव भी कम होगा ।

जीव के प्रति के भाव के प्रभाव से श्रीजिनेश्वरदेव की भक्ति में सच्चा भाव प्रगट होता है ।

जीव के प्रति के भाव का अमृत श्री जिनेश्वरदेव की सच्ची पहिचान के बाद प्राप्त होता है ।

श्री जिनेश्वरदेव की सच्ची पहिचान के लिए श्रीनवकार को समझना होगा । अतःकरण सीपना पड़ेगा ।

जो अपना हृदय श्रीनवकार के संगीत में लगा सकता है उसे विश्वहृदय की धड़कन सुनाई देती है । धर्म की शक्ति का अचित्य प्रभाव क्या है यह उसे बराबर समझ में आता है ।

धर्म का प्रभाव यानी सर्वाजीवहितविषयक शुभ भाव का प्रभाव ।

यह शुभ भाव हवा - पानी से भी अधिक सुलभ है । उसके प्रभाव से जीव जीवन जी सकते हैं ।

वह सूक्ष्मतम होने से पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश पर उसका प्रभुत्व है ।

उस धर्म के ही प्रभाव से प्रत्येक परमाणु स्वभाव में रहता है ।

अग्नि, वायु आदि में अभाव सहारक शक्ति होने पर भी शुभभाव के प्रभाव से वे सब अपनी - अपनी मर्यादा में रहते हैं ।

वायु उर्ध्वगमन नहीं कर सकता यह धर्म का ही प्रभाव है ।

अग्नि तीर्ध्वगमन नहीं करती यह धर्म का प्रभाव है ।

नमस्कार भाव को प्रयोग करने से ही प्राप्त होता है।
के प्रत्यक्ष भाव के साथ ही प्रत्यक्ष भाव के साथ ही

प्रभु का भाव ही प्रत्यक्ष भाव प्रत्यक्ष भाव प्रत्यक्ष
उत्त भाव के साथ प्रत्यक्ष भाव प्रत्यक्ष भाव प्रत्यक्ष
नमस्कार भाव प्रत्यक्ष भाव प्रत्यक्ष भाव प्रत्यक्ष

प्रभु को नमस्कार नहीं करना यह प्रत्यक्ष भाव है।

प्रभु को नमस्कार करना यह प्रत्यक्ष भाव है।

कृतघ्नता नमस्कार भाव में दूर होती है।

प्रत्यक्ष ऐसा कहा जा सकता है कि श्रीपत्तनरमेष्ठि भगवत्तो
को त्रिविध भावपूर्वक नमस्कार करना यह धर्म प्रत्यक्ष
नमस्कार नहीं करना वह धर्म प्रत्यक्ष है।

जो विचार, वाणी और व्यवहार जीव को श्री जिनेश्वर
भगवान् की आज्ञा से प्रलग करे उसे 'अधर्म' कहेंगे।

जो विचार, वाणी और व्यवहार जीव को प्रभु के
स्वाभाविक भावरूप धर्म से विमुख बनावे वह 'अधर्म'

जो विचार, वाणी और व्यवहार जीव को सर्वजीवहितकर
शुभभाव के वजाय ससार के सगे भाई समान स्वार्थ की साधना
में एकरूप बनावे वह 'अधर्म'।

जो विचार, वाणी और व्यवहार से जीव, श्री वीतराग
परमात्मा की आज्ञा विरुद्ध प्रवृत्ति में रसपूर्वक सम्मिलित हो
वह 'अधर्म'।

सर्वजीवहितविषयक शुभभाव को अपने ही स्वार्थ के लिए
विराधना करना वह 'अधर्म'।

जीव का जगत् के जीवों के प्रति का भावना यानी प्रभु के भावना धर्म के भाव का उगता मन्त्र होता है।

प्रभु के भाव का साक्षात् का काने हो पाया मन्त्र भावनामय चित्त में स्थिर करने के लिए श्री नारायण का नाम उच्चारण करना अनिवार्य है।

श्री नारायण ही मन में यह पाया पण्डित करना है जिस प्रभाव से मन में स्थूल चित्त नहीं आते, वहिर्भ्रमण प्रत्यक्ष लगता है, दुर्भात के स्पर्श से विनमित हो जाता है।

स्वयं अपने स्वार्थ का ध्यान करे वह आर्त्तध्यान।

स्वयं प्रभु के भाव का ध्यान करे वह धर्मध्यान।

धर्मध्यान में सर्वजीव हितकर दमता है।

आर्त्तध्यान में अवकार को आकर्षित करने की पावता है

‘धर्म की जय’ यानी प्रभुजी के भाव की जय।

प्रभुजी के भाव की जय के लिए प्रभुजी की आज्ञा का पालन अनिवार्य है।

प्रभुजी की आज्ञा के पालन से प्रभुजी के भाव की प्रभावना होती है।

‘धर्म की जय’ यानी जगत् के जीव मात्र के कल्याण की भावना को त्रिविध से भाव देना है।

‘धर्म की जय,’ ‘अधर्म की पराजय’ को सूचित करता है।

अधर्म का पराजय यानी अधर्म का मूल सहजमल की पराजय।

नमो ते सर्वभूते । नमो ते सर्वभूते । नमो ते ।

पशु के भाव का स्वरूप । नमो ते सर्वभूते । नमो ते ।
 आत्मा पशु के भाव का भाव है । नमो ते । नमो ते ।
 तीर्थों की । नमो ते । नमो ते । नमो ते ।

सर्व आत्मा या सर्वभूतों को एक करने का उद्देश्य है ।
 नमो ते सर्वभूते । नमो ते । नमो ते ।
 नमो ते । नमो ते । नमो ते ।
 नमो ते । नमो ते । नमो ते ।

श्री नवकार की भावना जीवमात्र के हित को और प्रेरित
 करती है ।

अपनेपन के विचार के स्वरूप के पाये पर आदि से गये
 श्री नवकार के आराधक को मन में प्रथम 'नमो' पद का साथ
 होता है और वही बताता है कि, श्री नवकार के आराधक का
 भाव अपने हितकी छोटीसी वृत्ति से विपन्न नहीं रहता है ।

स्वार्थ से सम्बन्ध छुड़ाने वाले श्री नवकार में आत्मा को
 परमार्थपरायणभाव की पराकाष्ठा पर ले जाने की सम्पूर्ण
 क्षमता है ।

परमार्थपरायणता से धर्म है, तथा धर्म से परमार्थ-
 परायणता है ।

धर्मात्मा स्वार्थाधीन हो ऐसा नहीं हो सकता, तथा जो
 स्वार्थाधीन हो वह सच्चा धर्मप्रेमी हो ऐसा भाग्य से ही होता है

धर्म की पहिचान हो यानी स्वार्थ के साथ का सम्बन्ध बढ़
 करने की वृत्ति परिणाम में प्रगट होती है ।

[Faint handwritten notes at the bottom of the page]

1. The first part of the document is a list of names and addresses, which appears to be a directory or a list of subscribers. The names are written in a cursive script, and the addresses are listed below them.

[illegible]

सम्बन्ध सजातीय में ही होता है इस प्रकार नियमों का
अर्थ यह है कि जन्म के समस्त जीवों का मूल जानिए
में से उसे शुद्धता का शन करना यह सजातीय को सच्च
व देकर उन्हें ही प्रभावना करने का सर्वोत्तम काम है।
पैसे से सारी ही जा सके हैं।

पैसे से खरीदी जा सके ऐसी वस्तु श्री नवकार से माग
ना अपमान करने के बराबर है।
श्री नवकार

श्री नवलार यह कोई दुकान नहीं है कि जहा जाकर गु
र या सोने-चांदी को माग की जाय ।

ऐसे तुच्छ पदार्थ मागने का मन हो जाय तो उसके नेत्र अतः करण से पश्चात्ताप के ग्रासू ग्रावें तो समझना कि बकार बराबर लागू होता जा रहा है।

श्री नवकार में रहे भाव को भूलने की पात्रता के विकास के साथ मात्र अपने लिए श्री नवकार से कुछ भी मागते साधक इस तरह शर्माता है जिस तरह ईमानदार व्यापारी नीति विरुद्ध अधिक दाम लेते समय शर्माता है ।

जगत् के जीवों को दिये जाने वाले भाव के बदले में भी श्री नवकार से कुछ भी नहीं मागा जा सकता । ऐसा करना सौदेवाजी गिनी जायगी । सौदेवाजी का दानधर्म के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता ।

बदले की अपेक्षा से होने वाले कार्य में शुभभाव की चादनों क्षुण्ण हो जाती है ।

श्री नवकार की साधना यानी सर्व समर्पणभाव की पात्रता के विकास के लक्ष्य की साधना ।

श्री नवकार की साधना यानी पाप के मूल सहजमल सम्पूर्ण क्षय की साधना ।

श्री नवकार की साधना यानी श्री अरिहत परमात्मा : आज्ञा के अनुसार पवित्र और अप्रमत्त जीवन की साधना ।

परमपद की साधक आत्मा, स्वार्थ के विविध विचारों बीच शांति से नहीं बैठ सकता । आर्त्तिध्यान की असर से उस प्राण सात रोककर मरने जैसा सचोटा अनुभव उसे होता है उसके आचरण में नम्रता और परोपकार की सुगन्ध होता है

आचरण पर असर नहीं पहुँचा सके ऐसे विचार कच्चे रंग के गिने जायेंगे ।

परिणामगत सच्चे विचार पक्के रंग की तरह आचरण के पोत को अपना रंग लगाता ही है ।

श्री नारायण की विष्णु देवता का नाम है श्री नारायण
मनुष्य है।

श्री नारायण के एक एक नाम में उपासना होती है, जो
तत्त्व-साक्षात् के एक एक परम में हीन का हीन नाम है।
उत्ते है।

इस नाम को जगभूत मानने की लिए प्रपन्न को श्री नारायण
का जगभूत प्रपन्न प्रणिपत्य है। श्री नारायण की मर्मापन क्षुण्
प्रिया श्री नारायण प्रपन्न में पुरा पलायन नहीं आया।

अनुराग की जो प्रतिक्रिया है वह अनुग्रह है।

प्रयत्न प्रपन्न जितने भाग्यशाली श्री नारायण का स्मरण
करेंगे उतने प्रमाण में उमका भाग प्रपन्न स्वभास्व होगा।
प्रपन्न की अनुभव होगा।

उपकारी भगवतो ने श्री नवकार को चोदह पूर्व का मार
कहा है वह उसके साथ गहरा परिचय होने के बाद यथार्थरूप
में हृदयस्थ होता है।

चोदह पूर्व में जो कुछ है वह सब श्री नवकार में है इसका
सचोटा अनुभव उसकी विधि-निष्ठापूर्वक की आराधना के प्रभाव
से आराधक को होता है।

देखने में छोटे से श्री नवकार का प्रत्येक अक्षर बहुपार्श्ववत्
हीरे की तरह, साधक की आत्मा के अधिकार अज्ञान को दूर
करने में अचिंत्य सहायक होता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की उत्तमता के स्तर को कायम
रखकर जो भाग्यशाली श्री नवकार की आराधना करता है
उसके सम्पूर्ण मनोरथ श्री नवकार पूरे करता है।

ममता एक ही चक्रान्तर में प्रकट हुई है। एक मन का भी भाग्य के दो पक्षों पर प्रभाव होता है।

परमपति जैसे मानासिक प्रसन्न भी नाशक के साक्ष को होनेवाला है। उसके किसी विचार-प्रदेश में प्रयत्नहीनता, शून्यता एक भण भी नहीं दिखना चाहिए।

शून्यता वानो जानारी। उसका नम्रता के भाव कोई सम्बन्ध नहीं होता।

महं भाव को दूर करने वाला रसायन नम्रता है।

शून्यता, जीव के परिणाम को तार-तार कर देती है।

मा की गोद में बालक निश्चित रहे वैसे श्री नवकार माता की गोद में साधक निश्चित रहता है।

‘अपनी चिन्ता’ यह साधक की कमजोरी गिनी जायगी।

जो स्वयं ही अपनी चिन्ता का भार उठाकर चलने में समर्थ हो तो फिर श्री नवकार की शरण में जाने का प्रश्न उठता ही नहीं।

श्री नवकार का शरण इसलिए अनिवार्य है कि अपने अपने प्रयत्नों से महामोह के गाढ़ वधन से नहीं छूट सकते।

स्वयं अकेला अपना ही विचार करता रहे इसमें प्रभु की वया का तिरस्कार है।

अपनी रक्षा करने वाली महाशक्ति की विद्यमानता में स्वयं अपनी चिन्ता की अग्नि में भुलसता रहे यह तीव्र पापोदय की निशानी है।

पापोदय सिवाय ऐसी उलटी मति किसी को भाग्य से ही सूझती है !

7

8

9
10

जाय वहाँ तक श्री नवकार की अर्चित्य शक्ति के एक अश का भी भाग्य से ही सचोट अनुभव होता है ।

अरवपति जैसी मानसिक मस्ती श्री नवकार के साधक को होनी चाहिए । उसके किसी विचार प्रदेश में अर्थहीनता, दीनता एक क्षण भी नहीं टिकना चाहिए ।

दीनता यानी लाचारी । उसका नम्रता के साथ कोई सम्बंध नहीं होता ।

अहं भाव को दूर करने वाला रसायन नम्रता है ।

दीनता, जीव के परिणाम को तार-तार कर देती है ।

मां की गोद में बालक निश्चित रहे वैसे श्री नवकार माता की गोद में साधक निश्चित रहता है ।

‘अपनी चिंता’ यह साधक की कमजोरी गिनी जायगी ।

जो स्वयं हो अपनी चिंता का भार उठाकर चलने में समर्थ हो तो फिर श्री नवकार की शरण में जाने का प्रश्न उठता ही नहीं ।

श्री नवकार का शरण इसलिए अनिवार्य है कि अपने अपने प्रयत्नों से महामोह के गाढ़ बधन से नहीं छूट सकते ।

स्वयं अकेला अपना ही विचार करता रहे इसमें प्रभु की दया का तिरस्कार है ।

अपनी रक्षा करने वाली महाशक्ति की विद्यमानता में स्वयं अपनी चिंता की अग्नि में भुलसता रहे यह तीव्र पापोदय की निशानी है ।

पापोदय सिवाय ऐसी उलटी मति किसी को भाग्य से ही सृजती है !

जिसे श्री नवकार अर्च्छा लगता है उसे दान का विज्ञापन अर्च्छा लगे क्या ?

जिसे श्री नवकार अर्च्छा लगता है उसे तो प्रभु अर्च्छा लगे, प्रभु की आज्ञा अर्च्छी लगे, प्रभु को भावना अर्च्छी लगे, मैत्री-भाव में आनन्दपूर्वक भटकना अर्च्छा लगे, प्रमोद भाव की प्याऊ पर बैठना अर्च्छा लगे, कारुण्यभाव की गंगा में स्नान करना अर्च्छा लगे, माव्यस्थ भावना के शिखर पर घूमना अर्च्छा लगे, दान-शोल-तप और भावरूपी वर्म की आराधना अर्च्छी लगे ।

अर्च्छे-बुरे के बीच विवेक नहीं रखा जाय तो श्री नवकार के साथ सम्बन्ध कभी पक्का नहीं होगा । श्री नवकार का सम्बन्ध पक्का न हो वहाँ तक भव के बधन ढीले नहीं होंगे । भव के बधन ढीले नहीं हों तो परिणाम आर्त्तव्यान और रोद्रव्यान से पर नहीं हुआ जा सकता । आर्त्तव्यान और रोद्रव्यान में समय व्यतीत हो यानी उसके फलस्वरूप तिर्यच और नरक गति के दुरा भोगने पड़े ।

राजा के सम्बन्धी को राजा के अफसर भी नमस्कार करते हैं, वैसे श्री नवकार के सम्बन्धी को तीनो जगत् को विवेकी आत्मा प्रणाम करती है ।

प्रभुम कर्मों के जोरदार हमले के सामने श्री नवकार के आशान प्रवेश बन्दर के रूप में उसका सावक के चारों तरफ फैल जाता है यह वास्तविकता है ।

जिस साधना के अंत पर एक साधक वित्तमणिरत्न अथवा कामहुन प्राप्त कर ले उसकी साधना के अन्त में वह साधक आर्त्तवित्तम भूम उड़ाता करे फिर भी श्री नवकार के एक 'न' अक्षर का भी वह अनिहारो नहीं हो सकता ।

जिसे श्री नवकार अच्छा लगता है उसे दान का विज्ञापन अच्छा लगे क्या ?

जिसे श्री नवकार अच्छा लगता है उसे तो प्रभु अच्छा लगे, प्रभु की आज्ञा अच्छी लगे, प्रभु को भावना अच्छी लगे, मैत्री-भाव में आनन्दपूर्वक भटकना अच्छा लगे, प्रमोद भाव की प्याऊ पर बैठना अच्छा लगे, कारुण्यभाव की गंगा में स्नान करना अच्छा लगे, माव्यस्थ भावना के शिखर पर घूमना अच्छा लगे, दान-शोल-तप और भावरूपी वर्म की आराधना अच्छी लगे ।

अच्छे-बुरे के बीच विवेक नहीं रखा जाय तो श्री नवकार के साथ सम्बन्ध कभी पक्का नहीं होगा । श्री नवकार का सम्बन्ध पक्का न हो वहाँ तक भव के बधन ढोले नहीं होंगे । भव के बधन ढीले नहीं हों तो परिणाम आर्त्तव्यान और रौद्रव्यान से पर नहीं हुआ जा सकता । आर्त्तव्यान और रौद्रव्यान में समय व्यतीत हो यानी उसके फलस्वरूप तिर्यंच और नरक गति के दुःख भोगने पड़े ।

राजा के सम्बन्धी को राजा के अफसर भी नमस्कार करते हैं, वैसे श्री नवकार के सम्बन्धी को तीनों जगत् की विवेकी आत्मा प्रणाम करती है ।

अशुभ कर्मों के जोरदार हमले के सामने श्री नवकार के आदोलन अभेद्य ब्रह्मरूप के रूप में उसके साधक के चारों तरफ फैल जाते हैं यह वास्तविकता है ।

जिस साधना के बल पर एक साधक चित्तमणिरत्न अथवा कामकुंभ प्राप्त कर ले उतनी साधना के बदले में वह साधक चाहे जितना घूम धड़ाका करे फिर भी श्री नवकार के एक 'न' अक्षर का भी यह अधिकारी नहीं हो सकता ।

कार सौंप देने के लक्ष्य से जिस एक एक अक्षर का जाप होता है उससे साधक के बहुत से पापों का क्षय होता है, पाप का क्षय होने से वह जगत् के जीवों को भाव देने की भूमिका में लायक बनता है। जगत् के जीवों को भाव देने की भूमिका से शाश्वतपद की भूमिका पैदा होती है।

अर्थात् श्री नवकार की विधि-निष्ठापूर्वक की आराधना से आराधक की मोक्ष भूख खुलती है और पापवृत्ति निर्मूल होती है।

पाप को समूल उखाड़ने वाले विश्वप्राण श्री नवकार को नमने में थोड़ीसी भी कंजूसी करने से पाप के जड़ तक पहुँचने की उसके अक्षर की क्षमता कुंठित हो जाती है और आराधक स्वयं श्री नवकार की प्राप्ति के बाद भी भव से पर ऐसे मोक्ष को प्राप्त करने में बहुत दूर हो जाता है।

पापकाम में पीछे हटा जाय तब ही मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है।

मोक्षमार्ग में आगे नहीं बढ़ा जाय तो जन्म, जरा और मृत्यु को नहीं जीते जा सकते।

मृत्यु को जीतने के लिये ही शाश्वत ऐसे श्री नवकार की जीवन पर्यंत को मित्रता अनिवार्य है। क्योंकि श्री नवकार अजेय है। अप्रतिहत है। आनंदस्वरूप है।

करोड़पति भीख में मांगता वैसे श्री नवकार का धारक भी ।

ऐहित्य मुक्त प्रकार है। वृत्ति का ही एक

उस भाव को साक्षात् करने के लिये जो कि साक्षात् होता है। अर्थात् जो भाव को साक्षात् करने के लिये प्रभुभाव जो काम करता है वह प्रमाणित है।

उस भाव को निश्चिन्त, पशु-नमः का प्रमाणित है।

जिस में भी स्वयं अपने स्वयं का प्रमाणित होता है। अर्थात् नहीं कर सकते जानते पशु-नमः का प्रमाणित है। यह निश्चित हो जाता है।

ऐसा नमस्कार भाव प्रपन्न में पड़ते। उसका प्रमाणित है। उसको जानकारों जीवों जगत् के जीवों का है। उस जानकारों के प्रभाव में उस सबका श्री नवकार को प्रभुत्व भरती निश्चिन्त में प्रानन्द से प्रपन्न का मनोरथ जगत्।

इस मनोरथ की पूर्ति के लिए सबके जीवन परमात्मपरायण बने। त्याग-तप और सयम को निवेष्टी में सब के निविद्य ताप दूर हो !

जगत् में नमस्कार को हमेशा जय हो !

जीवमात्र के सहजमल का समूल उच्छेद हो !

प्रभु की दया के पात्र, त्रण जगत् के जीवों के परिणाम में प्रभुभाव का अवतरण हो !

प्रभुभाव के परम प्रभाव को निविद्य स्वीकार कर जगत् के जीव कृतघ्नता के महापाप से पार हो !

सर्व कल्याण के महापर्व को सप्रेम आमात्रित करने वाले श्री नवकार का सब के हृदय में निवास हो !

इस भाव को जगत् के जीवों को मिलाने के लिये प्रकट
होती है। नारायण जी भोजी श्री गुरुदेव की आज्ञा से
भुवनेश्वरी जी काम करती हैं। इस लिये प्रकट है।

इस भाव को निन्दित, अपूर्व नमस्कार समझना चाहिये।

जब न भी स्थापना स्थापना हो पाए जान को प्रकट
नहीं कर सकने वालों अपूर्व नमस्कार परमेश्वर की आज्ञा से प्रकट
निश्चिन्त हो जाना है।

ऐसा नमस्कार भाव अपने में पायेंगे। इसका प्रभाव ताक
में फेंके। उगते जानकारों तानों जगत् के जीवों का हो।
उस जानकारों के प्रभाव में उन साक्षात् श्री नवकारों की प्रकृत
भरती निश्चय में प्रानन्द से भ्रमने का मनोरथ जगें।

इस मनोरथ की पूर्ति के लिए सबके जीवन परमात्मपरायण
बने। त्याग-तप और सयम को विवेकी में सब के विविध
ताप दूर हो।

जगत् में नमस्कार की हमेशा जय हो।

जीवमात्र के सहजमल का समूह उच्छेद हो।

प्रभु की दया के पात्र, त्रण जगत् के जीवों के परिणाम में
प्रभुभाव का अवतरण हो।

प्रभुभाव के परम प्रभाव की त्रिविध स्वीकार कर जगत्
के जीव कृतघ्नता के महापाप से पार हो।

सर्व कल्याण के महापर्व को सप्रेम आमंत्रित करने वाले
श्री नवकार का सब के हृदय में निवास हो।

